THE TIMES OF INDIA

Date: 20-01-18

State of Folly

Beware the mob. Do not patronise it

TOI Editorials

Freedom of expression must be protected despite threats to law and order but it is unfortunate that four BJP ruled states ignored this self-evident constitutional precept and then got tutored on creative freedom by Supreme Court judges. The apex court's stay against the ban on Padmaavat is another example of judiciary rectifying flawed executive orders. SC noted that any possible concern regarding the film's content or danger to public order would have been considered by the censor board in the discharge of its duties under the Cinematograph Act and state governments had little leeway to ban films.

State governments are still exploring legal options. While they are free to pursue this futile exercise a more rewarding course of action would be to provide unconditional support and police protection to cinema halls. Safeguarding free speech is critical to preserving democracy. Even the censor board's expansive scope is contentious. Certifying a film is understandable but suggesting audiovisual cuts and title changes is no less a dampener of creative freedoms. SC's observation that states have "guillotined creative rights" starkly captures, perhaps inadvertently, the blood thirst inherent in BJP leader Suraj Pal Amu's bounty of Rs 10 crore for beheading Sanjay Leela Bhansali and Deepika Padukone.

Karni Sena's crude threats of wreaking violence are part of this wider socio-political pattern of rising intolerance. The Padmaavat ban is reminiscent of how communal riots are fuelled by administrations that surrender to mobs. State governments must disabuse themselves of the notion that right to creative expression is a utopian or elitist construct. As Supreme Court noted: "When creativity dies, values of civilisation corrode." Governance and the capacity to govern are often challenged when the state comes into conflict with collective interests. The Constitution has helped negotiate these pitfalls for 67 years. Bans, on the other hand, are shortcuts to disaster.

दैनिक भास्कर

Date: 20-01-18

नेताजी के तीन सिद्धांतों से होगा देश का उद्धार

सुभाषचंद्र बोस की 121वीं जयंती पर आधुनिक और प्रगतिशील राष्ट्र के निर्माण का उनका विचार

चंद्र कुमार बोस, (लेखक सुभाषचंद्र बोस के बड़े भाई शरदचंद्र बोस के प्रपोत्र हैं।)

नेताजी सुभाषचंद्र बोस 18 अगस्त 1945 को गायब हो गए, मेरे जन्म के बहुत पहले। मेरे पिता अमीय नाथ बोस अपने चाचा नेताजी के बहुत निकट थे। 1928 से 1936 तक वे उनके साथ बेडरूम शेयर करते थे। फिर जेल में, विदेशों में और वुडबर्न पार्क के हमारे मकान की दूसरी मंजिल पर दोनों ने बहुत-सा वक्त साथ गुजारा। नेताजी को नींद नहीं आती थी। वे प्राय: रात साढ़े बारह-एक बजे तक लौटते। फिर नहाते और टेबल पर जो भी भोजन रखा होता उसे खाते। फिर वे मेरे पिताजी को जगाते और गांधी, नेहरू, पटेल सहित कई मुद्दों पर चर्चा करते। 1928 में जब कोलकाता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो वर्दीधारी वालंटियरों का एक दल बनाया गया और नेताजी उसके प्रमुख बने। मैंने पिताजी से सुना था कि जब सुभाष दूसरी मंजिल से पहली मंजिल पर आ रहे थे तो उनके पिताजी जानकी नाथ बोस ने ऐसा कुछ कहा जो मुझे भविष्यवाणी जैसा लगता है। उन्होंने कहा, 'सुभाष, मुझे उम्मीद है कि तुम भारत के गैरीबाल्डी (जनरल, राजनेता और राष्ट्रवादी जिन्होंने इटली के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई) बनोगे।'

मुझे अपने दादाजी शरदचंद्र बोस को जानने का भी मौका नहीं मिला क्यों वे भी मेरे जन्म के पहले गुजर चुके थे। नेताजी की तरह उनके बड़े भाई शरदचंद्र के बारे में भी मुझे पिताजी से ही पता चला। एक बात जो मैंने नेताजी के विचारों से सीखी कि एक बार उद्देश्य तय हो जाए तो फिर कभी कोई समझौता मत करो। कुछ भी हो जाए वह लक्ष्य हासिल करना ही है। दोनों भाई अखंड, स्वतंत्र भारत चाहते थे। नेताजी कहते थे, 'देशवासियों को ताज़ा उर्जा से प्रेरित करने के लिए हमें उनके सामने स्वतंत्रता की अखंड छवि रखनी होगी। इतने बरसों से हमने उन्हें बताया कि स्वतंत्रता यानी राजनीतिक स्वतंत्रता। लेकिन आगे से हमें बताना होगा कि हम उन्हें सिर्फ राजनीतिक बंधन से आज़ाद नहीं करना चाहते बल्कि हर तरह के बंधनों से आज़ादी देना चाहते हैं। स्वतंत्रता की लड़ाई का लक्ष्य है राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक दमन की दासता से आज़ादी। हमें स्वतंत्र व वर्गविहीन समाज बनाना होगा।'

आज देश के सामने इतिहास का सबसे बड़ा संकट है। आज़ादी के बाद से ही विभिन्न दलों ने सांप्रदायिक, क्षेत्रीय और जातिवादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया है, जो आज भारत के अस्तित्व के लिए ही खतरा बन गई हैं। कुछ ही लोगों के हाथों में आर्थिक सत्ता व संपदा सिमट गई है। बढ़ती विषमता के कारण देश में असंतोष खदबदा रहा है। अब वक्त आ गया है कि नेताजी के सिद्धांतों को अमल में लाकर देश को आधुनिक व प्रगतिशील राष्ट्र बनाएं। उनका पहला सिद्धांत था निखालिस और अत्यंत सक्रिय राष्ट्रवाद। यहां स्वामी विवेकानंद को उद्धृत करना होगा, 'पहले देवता जिनकी हमें आराधना करनी चाहिए वे हैं देशवासी।' नेताजी का दूसरा सिद्धांत था, ऐसा समाजवाद जिसकी जड़ें भारत के विचार व संस्कृति में हो। 30 मार्च 1929 को रंगपुर राजनीतिक सम्मेलन में उन्होंने कहा था, 'स्वामी विवेकानंद ने बंगाल के इतिहास को नया मोड़ दिया है। उन्होंने बार-बार कहा जीवन में उनका मिशन है व्यक्तियों का निर्माण। उन्होंने किसी पंथ तक अपने को सीमित नहीं रखा बल्कि पूरे भारतीय समाज को गले लगाया। इस समाज का संबंध कार्ल मार्क्स की किताबों से नहीं है। इसका संबंध भारतीय विचार व संस्कृति से है। हमें समाजवाद पश्चिम से आया विचार लगता है क्योंकि, हम अपने ही इतिहास से दूर हो गए हैं। हमें नहीं भूलना चाहिए कि मार्क्स के मूल शिष्य रूसियों ने भी मार्क्सवाद को ज्यों का त्यों नहीं अपनाया। इसलिए भारत को अपना समाजवाद विकसित करना होगा।'

आधुनिक विश्व में किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता व सुरक्षा तब तक सुनिश्चित नहीं हो सकती जब तक कि वह सैन्य स्तर पर मजबूत राष्ट्र नहीं होता। इसलिए नेताजी का तीसरा सिद्धांत था देश में सैन्यवाद का विकास। नेताजी अर्जुन और महाराणा प्रताप जैसे योद्धाओं के प्रतीक थे। महात्मा गांधी अहिंसक संघर्ष में विश्वास करते थे और वे व्यापक जनमानस को इसके लिए एकजुट कर सके। यह उनकी उपलब्धि थी। नेताजी का मानना था कि सशस्त्र संघर्ष के बिना भारत एकजुट नहीं रह पाएगा। स्वतंत्रता संघर्ष के जरिये आनी चाहिए। नेताजी अतिवादी नहीं, व्यावहारिक थे। अाज भारत को एशिया की उभरती महाशक्ति माना जा रहा है, चीन से ठीक पीछे। हाल के दिनों में इसने प्रभावशाली आर्थिक वृद्धि हासिल की है। भारतीय सेना दुनिया में तीसरी सबसे बड़ी सेना है। देश का वैभव 26 जनवरी को गणतंत्र दिवस पर दिल्ली और अन्य शहरों में झांकियों में प्रस्तुत होगा। कोलकाता में जब रेड रोड (नया नाम- इंदिरा गांधी शारोनी) से गणतंत्र दिवस की भव्य परेड गुजरेगी तो एक भव्य प्रतिमा उसे निहारेगी, जो नेताजी सुभाषचंद्र बोस की है। 23 जनवरी 2018 को उनकी 121वीं जयंती है। केंद्र सरकार के सामने प्रस्ताव है कि केंद्र सरकार नेताजी के जन्मदिवस को 'राष्ट्रीय देशप्रेम दिवस' घोषित किया जाए।

बेशक दुनिया की तरह भारत में भी हम सच्चे नेतृत्व के अभाव पर खेद जताते हैं। साझे हित की कीमत पर स्वहित सर्वोपरि हो गया है। ऐसे ही उपद्रवी समय में सुभाषचंद्र बोस अपने योग्य नेतृत्व से स्त्री-पुरुषों को क्षुद्र मतभेदों से ऊपर उठकर आज़ादी के लिए लड़ने हेतु प्रेरित कर पाए थे। मैं युवाओं को संदेश देना चाहता हूं कि नेताजी को नेता के रूप में कौन-सी बात अनूठा बनाती थी? यह था धार्मिक प्रतीकों को राजनीतिक उद्‌देश्य से इस्तेमाल करने से उनका इनकार और यही कारण है कि सारे समुदायों में उनके प्रति जबर्दस्त आकर्षण था और है। हमें वह समाज बनाने के लिए खुद को फिर से समर्पित करना चाहिए जो नेताजी बनाना चाहते थे- ऐसा समाज जो हर तरह के बंधनों से मुक्त हो।ऐसा करते हुए हमें नेताजी के शब्द याद आएंगे : व्यक्ति के जीवन का भारतीय इतिहास की मुख्यधारा से मेल होना चाहिए। राष्ट्रीय जीवन और व्यक्तिगत जीवन पूरी तरह मिल जाना चाहिए। किसी की भी तकलीफ अपनी तकलीफ और किसी का भी गौरव खुद का गौरव लगना चाहिए। वे सारे लोग जिन्होंने भारत को मातृभूमि स्वीकार किया है या वे सारे जिन्होंने इसे अपना स्थायी घर बना लिया है वे मेरे भाई हैं.. (1926, मांडले जेल में लिखा वक्तव्य)।

नईदुनिया

Date: 20-01-18

न इस्तीफा, न किसी की अवमानना!

सुभाष कश्यप , (लेखक संवैधानिक मामलों के विशेषज्ञ व लोकसभा के पूर्व महासचिव हैं)

सुप्रीम कोर्ट का संकट अभी तक समाप्त होता नहीं दिख रहा है। इस मामले में सभी तथ्यों को पूरी तौर पर जाने बिना किसी के लिए भी तटस्थता के साथ यह कहना कठिन है कि किसका पक्ष कितना सही है, क्योंकि चार वरिष्ठ न्यायाधीशों की ओर से प्रेस कांफ्रेंस करने और इस दौरान एक लंबी चिट्ठी जारी करने के बाद भी सारी बातें स्पष्ट नहीं हैं। ध्यान रहे कि यह बात खुद चारों न्यायाधीशों ने भी कही कि वे सब कुछ नहीं बता रहे हैं और अभी तक यह भी स्पष्ट नहीं है कि विवाद की शुरुआत कब और कैसे हुई अथवा वे कौन से मामले थे जो इस विवाद के उभार की वजह बने?

इसे लेकर तरह-तरह की बातें हैं और इन अपुष्ट एवं विरोधाभासी बातों के आधार पर किसी नतीजे पर नहीं पहुंचा जा सकता और न ही पहुंचा जाना चाहिए। जो बात शीशे की तरह बिलकुल साफ है, वह यह कि भारत में ऐसा इसके पहले कभी नहीं हुआ। यह जो कुछ हुआ, वह दुखद भी है और दुर्भाग्यपूर्ण भी। मीडिया ट्रायल की आलोचना करने वाले सुप्रीम कोर्ट के चार न्यायाधीशों का मीडिया के सामने आना एक गंभीर मामला है। किसी भी लोकतांत्रिक देश के लिए यह अच्छा संकेत नहीं। जो संकट जनता के सामने आया या फिर यह कहा जाए कि जिसे लाया गया, उसका एक समाधान तो यह हो सकता था कि या तो चारों न्यायाधीशों की प्रेस कांफ्रेंस के बाद प्रधान न्यायाधीश यह कहते कि चूंकि उनके चार वरिष्ठ सहयोगियों ने उन पर सार्वजनिक तौर पर अविश्वास जता दिया है, इसलिए वह नैतिकता के आधार पर अपना पद छोड़ रहे हैं या फिर वह इन चार न्यायाधीशों के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट की अवमानना का मामला चलाते, ठीक वैसे ही जैसे जस्टिस कर्नन के खिलाफ चलाया गया था। ध्यान रहे कि चार न्यायाधीशों ने जो कुछ कहा, वह यदि किसी अन्य ने कहा होता तो उसे अदालत की अवमानना का दोषी मानकर तलब कर लिया गया होता। इसी तरह यदि चारों न्यायाधीश अपना पक्ष सही बताने के लिए प्रेस कांफ्रेंस करने के पहले त्यागपत्र दे देते तो शायद आज उन पर सवाल नहीं उठ रहे होते। क्या यह अच्छा नहीं होता कि वे त्यागपत्र देने के बाद जनता के सामने आकर यह कहते कि सुप्रीम कोर्ट में ऐसी स्थिति आ गई है जो उन्हें स्वीकार नहीं, लेकिन न तो इन चारों न्यायाधीशों ने प्रेस कांफ्रेंस करने के पहले त्यागपत्र देना जरूरी समझा और न ही इस प्रेस कांफ्रेंस के बाद प्रधान न्यायाधीश ने पद छाेडने की जरूरत समझी।

सबसे अच्छा तो यह होता कि सुप्रीम कोर्ट प्रशासन का मामला सार्वजनिक करने के पहले चार न्यायाधीश सभी 25-26 न्यायाधीशों की बैठक बुलाने की मांग करते। मीडिया अथवा अन्य बाहरी लोगों की गैरमौजूदगी में इन-कैमरा बैठक की जाती। सभी अपनी-अपनी बात कहते और मामले को हल करने की कोशिश की जाती। समस्या के समाधान का यही सबसे अच्छा तरीका होता, लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। अब यह कहा जा रहा है कि ऐसा किया जाना चाहिए, लेकिन यह तो वह काम था, जो पहले किया जाना चाहिए था।यह भी दुर्भाग्यपूर्ण है कि कुछ राजनीतिक दल और राजनेता इस विवाद में कूद पड़े हैं और अपनी-अपनी राजनीतिक रोटियां सेंकने का काम कर रहे हैं। यह ठीक नहीं कि इतने गंभीर मसले का राजनीतिकरण किया जाए। मेरा यह स्पष्ट मानना है कि इस विवाद में न सरकार को दखल देना चाहिए, न संसद को और न ही राजनीतिक दलों को।

संविधान में न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका के अधिकार और कर्तव्य अच्छी तरह परिभाषित हैं। विधायिका यानी संसद का काम कानून बनाना है तो न्यायपालिका यानी सुप्रीम कोर्ट का काम कानूनों की व्याख्या करना। किसी को एक-दूसरे काम में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं। भारत की स्थिति न तो ब्रिटेन जैसी है और न ही अमेरिका सरीखी। ब्रिटेन में जहां संसद सर्वोच्च है, वहीं अमेरिका में सुप्रीम कोर्ट। भारत में ऐसा नहीं है। भारत में तीनों अपने-अपने दायरे में ही सर्वोच्च हैं। हमारे लोकतंत्र की मूल भावना यही है कि जनता स्वंय अपने चुने हुए प्रतिनिधियों अर्थात एक राजनीतिक व्यवस्था के तहत अपने पर शासन करती है। संविधान में तीनों संस्थाओं- कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र और आपसी संबंध सही तरह से परिभाषित किए गए हैं, लेकिन कई बार तीनों संस्थाएं अपना काम सही तरह करती नहीं दिखतीं। जब वे अपने दायरे से बाहर जाकर काम करती हैं, तो समस्या पैदा होती है। न्यायपालिका और खास तौर पर सुप्रीम कोर्ट की ओर से तरह-तरह के मामलों की सुनवाई करते हुए अक्सर यह कह दिया जाता है कि जब कार्यपालिका या विधायिका अपना काम नहीं कर रही तो फिर किसी को तो यानी खुद उसे यह काम करना होगा, लेकिन क्या इसी तर्क के आधार पर कार्यपालिका या विधायिका सुप्रीम कोर्ट के हिस्से का काम कर सकती है? क्या सरकार या फिर संसद यह कहते हुए सुप्रीम कोर्ट के काम में दखल दे सकती है कि साढ़े तीन करोड़ मुकदमे लंबित हैं और वर्षों की देरी के बाद भी उनका निस्तारण नहीं हो पा रहा है?

यह समझने की जरूरत है कि न तो न्यायपालिका सुप्रीम है, न कार्यपालिका और न ही विधायिका। ये तीनों ही सुप्रीम नहीं। अगर कोई सुप्रीम है तो वह है संविधान। संविधान के ऊपर कोई है तो वह है देश की जनता। यह भी स्पष्ट है कि चाहे न्यायपालिका हो या कार्यपालिका अथवा विधायिका, ये तीनों ही जनता के प्रति जवाबदेह हैं। इन तीनों को इस जवाबदेही के आलोक में अपना काम करना चाहिए।इस पर आश्चर्य नहीं कि सुप्रीम कोर्ट के मौजूदा विवाद को लेकर कोलेजियम का मामला भी उठ रहा है। यह मसला रह-रहकर इसीलिए उठता है, क्योंकि कोलेजियम के जरिए हमारे न्यायाधीशों ने स्वयं को नियुक्त करने का अधिकार ले रखा है। दुनिया के किसी लोकतांत्रिक देश में ऐसा नहीं है। सच तो यह है कि यह संविधान की भावना के उलट है।सुप्रीम कोर्ट ने न्यायाधीशों की नियुक्ति संबंधी एनजेएसी कानून को असंवैधानिक ठहरा दिया था तो इसका यह मतलब नहीं कि उसने सही किया। उसने तो यह स्पष्ट ही नहीं किया कि एनजेएसी किस तरह से संविधान विरुद्ध है? संसद के बनाए कानून को खारिज करने वाला ऐसा कोई फैसला असंवैधानिक ही कहा जाएगा, जिसमें यह न स्पष्ट किया गया हो कि वह कानून संविधान के किस प्रावधान का उल्लंघन करता है?

मेरी समझ से एनजेएसी को खारिज करने का सुप्रीम कोर्ट का फैसला न केवल असंवैधानिक था, बल्कि एकपक्षीय और अलोकतांत्रिक भी। सुप्रीम कोर्ट को संसद के बनाए कानून की विवेचना करने का तो अधिकार है, लेकिन उसे कानून बनाने का अधिकार नहीं है। सुप्रीम कोर्ट ने एनजेएसी को खारिज करने के साथ ही जिस कोलेजियम सिस्टम को फिर से अपना लिया, उसका तो संविधान में जिक्र ही नहीं है। हमारे न्यायाधीश जिस ब्रिटेन के न्यायाधीशों की टिप्पणियों का अक्सर जिक्र करते रहते हैं वहां भी जजों की नियुक्ति के लिए एक आयोग बना हुआ है। न्यायाधीशों की ओर से ही न्यायाधीशों की नियुक्ति करने वाली व्यवस्था से भारतीय लोकतंत्र की गरिमा बढ़ती नहीं।

दैनिक जागरण

Date: 20-01-18

सुप्रीम कोर्ट ने खोला पद्मावत के रिलीज होने का रास्ता

मुख्य संपादकीय

यह अच्छा हुआ कि सुप्रीम कोर्ट ने फिल्म पद्मावत के प्रदर्शन को रोकने के लिए राजस्थान और गुजरात सरकार की अधिसूचनाओं को खारिज करते हुए यह निर्देश दिया कि अन्य राज्य भी ऐसी कोई अधिसूचना जारी नहीं कर सकते। सुप्रीम कोर्ट ने यह फैसला इसलिए दिया, क्योंकि सेंसर बोर्ड ने कुछ संशोधन-परिवर्तन के साथ इस फिल्म को रिलीज करने की अनुमति प्रदान कर दी है। कायदे से सेंसर बोर्ड की अनुमति के बाद राज्य सरकारों को इस फिल्म के प्रदर्शन को रोकने के बजाय इस पर ध्यान देना चाहिए था कि फिल्म का विरोध करने वाले किसी तरह का उपद्रव न करने पाएं, लेकिन दुर्भाग्य से उन्होंने अपने रवैये से ऐसे तत्वों को बल प्रदान करने का ही काम किया। इसे एक तरह से अराजकता के समक्ष स्वैच्छिक समर्पण ही कहा जाएगा। समझना कठिन है कि

राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश और हरियाणा की सरकारों ने पद्मावत फिल्म का प्रदर्शन रोकने की तत्परता क्यों दिखाई? क्या ये सरकारें यह साबित करने की होड़ में थीं कि वे उन लोगों की भावनाओं के प्रति ज्यादा संवेदनशील हैं जो इस फिल्म का विरोध कर रहे हैं? इससे खराब बात और कोई नहीं हो सकती कि रतलाम में स्कूली बच्चों की ओर से फिल्म पद्मावत का एक गीत गाए जाने पर आपत्ति उठी तो मध्य प्रदेश सरकार के गृहमंत्री ने यह कह दिया कि फिल्म के गाने भी प्रतिबंधित हैं। अगर राज्य सरकारें इस तरह किसी संगठन की मांग पर फिल्मों का प्रदर्शन रोकने लगीं तो फिर देश में फिल्मों का निर्माण ही मुश्किल में पड़ जाएगा, क्योंकि इतने बड़े देश में हर दूसरी-तीसरी फिल्म को लेकर कोई न कोई किसी तरह की आपत्ति उठा ही देता है। निराधार आपत्तियों का यह मतलब नहीं कि राज्य सरकारें खुद सेंसर बोर्ड का काम अपने हाथ में ले लें।

सेंसर बोर्ड एक सरकारी संस्था है। उसके अधिकारों का सम्मान राज्य सरकारें नहीं करेंगी तो और कौन करेगा? सेंसर बोर्ड की इस बात पर भरोसा किया जाना चाहिए कि फिल्म पद्मावत न तो इतिहास से छेड़छाड़ करती है और न ही किसी की भावनाओं की अनदेखी। बेहतर हो कि राज्य सरकारें सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर किंतु-परंतु करने के बजाय कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने पर ध्यान दें। वे ऐसा ही करें, इसे भाजपा की ओर से भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए, क्योंकि उसकी ही सरकारें पद्मावत का प्रदर्शन रोकने को तैयार थीं। अगर किसी संगठन को यह लगता है कि पद्मावत ठीक फिल्म नहीं है तो उन्हें उसका मर्यादित ढंग से विरोध करने और यह कहने का अधिकार है कि कृपया इस फिल्म को देखने से बचें, लेकिन इसके नाम पर वे उत्पात नहीं मचा सकते। जो लोग पद्मावत की रिलीज के विरोध में हिंसा करने की धमकी दे रहे हैं उनसे सख्ती से निपटा जाना चाहिए। अगर ऐसा नहीं किया जाता तो इससे कानून के शासन का उपहास उड़ने के साथ ही अराजकता के जरिये अपनी बात मनवाने वालों को बल मिलेगा। यह विचित्र है कि फिल्म पद्मावत का विरोध वे लोग अधिक कर रहे हैं जिन्होंने न तो फिल्म देखी है और न ही उसकी विषय वस्तु से अवगत हैं?

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 19-01-18

पाबंदी की कथा

संपादकीय

सुप्रीम कोर्ट ने चार राज्यों द्वारा फिल्म पद्मावत के प्रदर्शन पर लगाई गई पाबंदी को गलत करार दिया है। इसके साथ ही संजय लीला भंसाली की इस फिल्म के रिलीज होने का रास्ता अब पूरी तरह साफ हो गया है। उम्मीद है कि कहानी और प्रस्तुतिकरण के मामले में यह एक अच्छी फिल्म होगी। लेकिन यह भी तय है कि इसकी कथा में उतने उतार-चढ़ाव नहीं होंगे, जितने कि इस फिल्म की कहानी से लेकर इसकी रिलीज तक रास्ते में आए। दिसंबर 2016 में जब भंसाली ने इस फिल्म को बनाने की घोषणा की, तब उन्होंने कहा कि वह अपनी अब तक की सबसे बड़ी फिल्म बनाने जा रहे हैं। उस समय तक शायद उन्हें भी नहीं पता था कि वह अब तक के सबसे बड़े विवाद में फंसने जा रहे हैं। फिल्म कथाओं के बारे में अक्सर हमें यह पहले ही पता होता है कि अंत होते-होते कहानी किस तरफ जाएगी। लेकिन भंसाली की इस फिल्म के बारे में अंत तक यह बताना मुश्किल था कि इसका जो राजनीतिक किस्सा इन दिनों गरम है, वह अंत में किस

तरफ जाएगा। इस फिल्म की कहानी किसी की भावनाओं को बहुत ज्यादा आहत कर रही होगी, यह आशंका तो पहले भी बहुत नहीं थी, लेकिन इसे लेकर होने वाली राजनीति शुरू से ही कई खतरों की ओर इशारा कर रही थी। डर का एक बड़ा कारण यह भी था कि जिन क्षेत्रों में फिल्म को लेकर विरोध चल रहा है, उनमें से दो प्रदेशों में इसी साल विधानसभा चुनाव होने हैं। ऐसे मौकों पर राजनीतिक दल यह सोचने लगते हैं कि अगर हमने इस मुद्दे को छोड़ दिया, तो दूसरा दल पकड़ लेगा। इसी स्पद्र्धा में खतरा बढ़ता जाता है।

इन्हीं विवादों का दबाव था कि केंद्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड यानी सेंसर बोर्ड को प्रमाणपत्र दे देने के बाद भी फिल्म पर फिर से विचार करना पड़ा। हालांकि दोबारा भी उसे फिल्म की कथा में कोई खोट नजर नहीं आया। बस उसे एक ही चीज समझ में आई कि इसे ऐतिहासिक चरित्र पद्मावती से न जोड़कर देखा जाए, इसलिए इसका नाम मलिक मुहम्मद जायसी के महाकाव्य पद्मावत पर रखा जाए। हालांकि नाम बदलने का भी बहुत असर नहीं दिखा और विरोध करने वाले विरोध करते रहे। इसी विरोध के दबाव में राजस्थान, गुजरात, हरियाणा और मध्य प्रदेश की सरकारों ने यह घोषणा कर दी कि उनके राज्य में फिल्म पर पाबंदी रहेगी। इसी पाबंदी का मामला जब सुप्रीम कोर्ट पहुंचा, तो कोर्ट ने इसे न सिर्फ गलत ठहराया, बल्कि राज्य सरकारों को यह जिम्मेदारी भी सौंपी कि वे इसकी वजह से कानून-व्यवस्था को न बिगड़ने दें।

सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले का महत्व सिर्फ इतना ही नहीं है कि उसने फिल्म के रिलीज पर लगी पाबंदी को गलत ठहराया, बल्कि यह भी है कि उसने एक संस्था के रूप में सेंसर बोर्ड की हैसियत को भी स्थापित किया है। पिछले कुछ दिनों से यह सवाल पूछा जाने लगा था कि अगर सेंसर बोर्ड द्वारा पास कर दिए जाने पर भी राजनीतिक कारणों से किसी फिल्म पर पाबंदी लग सकती है, तो ऐसे में सेंसर बोर्ड का क्या अर्थ रह गया? इसका संदेश यही जाता कि राजनीति एक संस्था से ज्यादा बड़ी है। अतीत में ऐसा होता भी रहा है कि फिल्म को सेंसर बोर्ड ने तो पास कर दिया, लेकिन राजनीतिक कारणों से फिल्म को कई जगहों पर लोग देख ही नहीं सके। माना जाना चाहिए कि सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले के बाद सब बंद हो जाएगा। विरोध करने वालों और पाबंदी लगाने वालों को भी यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि इंटरनेट के युग में वैसे भी ऐसी पाबंदियों और विरोध का कोई अर्थ नहीं। अब ऐसे तमाम तरीके हैं, जिनसे लोग आसानी से फिल्म देख सकते हैं, कहीं भी और कभी भी।

Date: 19-01-18

अद्भुत संयोग से जुड़े दो राष्ट्र

सुधांशु त्रिवेदी राष्ट्रीय प्रवक्ता, भाजपा

इस समय इजरायल के प्रधानमंत्री नेतन्याहू भारत के दौरे पर हैं। भारत और इजरायल संबंधों का विमर्श मीडिया के केंद्रबिंदु में है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और नेतन्याहू की गले मिलते हुए तस्वीर दोनों देशों के प्रगाढ़ होते संबंधों की प्रतीक बनी हुई हैं। इस समय यह चर्चा है कि आधुनिक तकनीक, कृषि, प्रतिरक्षा के हथियार और आधुनिकतम निरागनी उपकरणों जैसे अनेक क्षेत्र हैं, जहां भारत इजरायल से लाभ प्राप्त कर सकता है। इनके अलावा, कूटनीतिक व रणनीतिक स्तर पर संबंधों से परे भारत और इजरायल के मध्य एक अद्भुत संयोग का संबंध भी है। भारत और इजरायल, दोनों विश्व के दो प्रागैतिहासिक राष्ट्र हैं। यानी लिखित क्रमबद्ध इतिहास के काल से अधिक पुराना इनका अस्तित्व और

इतिहास है। दोनों में एक और सांस्कृतिक साम्य है। पश्चिम के सभी मत और संप्रदाय 'सिमेटिक रिलिजन' अथवा 'अब्राहमिक रिलिजन' माने जाते हैं। चाहे वह ईसाई हो अथवा इस्लाम। सबकी आदिकाल की कथाओं में एक साम्य है और इजरायल सिमेटिक रिलिजन्स का मूल केंद्र रहा। तो यह कहा जा सकता है कि इजरायल पश्चिमी संस्कृति के धर्म-संप्रदायों का केंद्र रहा है। इसलिए यरुशलम आज दुनिया का एकमात्र ऐसा शहर है, जहां यहूदी, ईसाई और इस्लाम, तीनों के अत्यंत पवित्र स्थल पाए जाते हैं। इसी प्रकार, पूरब में जितने भी धर्म, मत और संप्रदाय उत्पन्न हुए वैदिक काल की अग्नि पूजा से लेकर विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा वाला वर्तमान हिंदू धर्म, जैन, बौद्ध, सिख, यहां तक कि चीन के तमाम मत संप्रदायों का मूल स्थान भारत रहा है। यानी भारत और इजरायल विश्व के दो प्रागैतिहासिक सांस्कृतिक सभ्यता के केंद्र हैं।

भारत और इजरायल, दोनों की ही सभ्यताओं ने बहुत अत्याचार और दमन सहा। दोनों ही लगभग दो हजार वर्षों तक बाहरी आक्रमणों से अपनी सभ्यता को बचाए रखने का संघर्ष करते रहे। इजरायल तो कई सदियों के लिए दुनिया के नक्शे से ही मिट गया था। सदियों के दमन व अत्याचार के बाद भी दोनों प्रागैतिहासिक राष्ट्र 20वीं सदी में लगभग एक ही समय पुन: उठकर खड़े हो गए। दोनों लगभग एक साथ स्वतंत्र हुए। स्वतंत्रता से पूर्व या उसके साथ दोनों ने भारी नरसंहार झेले हैं। द्वितीय विश्व युद्ध में यूरोप में यहूदियों का नरसंहार 'होलोकॉस्ट' और भारत विभाजन के दौरान सांप्रदायिक हिंसा में लाखों लोगों का नरसंहार और करोड़ों का विस्थापन, ये दोनों घटनाएं मानव इतिहास के सबसे बडे नरसंहारों और विस्थापन की प्रतीक हैं। इजरायल ने अपनी आजादी के समय दुनिया के सभी देशों में यहूदी समुदाय पर हुए अत्याचार का इतिहास संकलित करवाया, तो एकमात्र देश भारत निकला, जहां के यहूदियों ने कहा कि अत्याचार तो दूर, उन्हें कभी भारत में अपने धर्म के कारण भेदभाव भी नहीं अनुभव हुआ।

आजादी के बाद दोनों ही देशों ने पहले ही 25 साल में चार युद्ध झेले। दोनों ही देशों ने अपनी तीसरी लड़ाई में शानदार सफलता हासिल की और चौथी लड़ाई में अपने विरोधियों को निर्णायक रूप से परास्त किया। चौथी लड़ाई के बाद दोनों ही देशों के विरोधियों ने यह मान लिया कि सीधी लड़ाई में विजय संभव नहीं है और दोनों ही देश एक साथ 1970 के दशक से आतंकवाद के शिकार बने। 1972 के म्यूनिख ओलंपिक में 'ब्लैक सेप्टेंबर' नामक आतंकवादी संगठन द्वारा इजरायली खिलाड़ियों की हत्या और 1970 के दशक के अंत और 80 के दशक के शुरू में पाकिस्तान द्वारा भारत में आतंकी घटनाओं की शुरुआत। यह भी संयोग है कि जब भारत ने पाकिस्तान को निर्णायक पराजय दी, तब इसका नेतृत्व एक महिला इंदिरा गांधी कर रही थीं। जब इजरायल ने अपने पड़ोसी अरब देशों को निर्णायक पराजय दी, तो उसका नेतृत्व भी एक महिला गोल्डा मायर कर रही थीं। आज 21वीं सदी में भारत और इजरायल, दोनों एक मजबूत लोकतंत्र, अर्थव्यवस्था और सामरिक शक्ति से संपन्न राष्ट्र बनकर उभरे हैं। यह भी एक संयोग है कि आज विश्व की सबसे बड़ी शक्ति अमेरिका में सबसे ताकतवर वर्ग यहूदी समुदाय है। और अमेरिकी व्यवस्था पर उसका भारी प्रभाव है। और अब अमेरिका में दूसरा सबसे शक्तिशाली वर्ग भारतीय समुदाय बनकर उभर रहा है, जिसका हालिया उदाहरण तब दिखा, जब डोनाल्ड ट्रंप अपने चुनाव प्रचार में रिपब्लिकन हिंदू कोलिशन के बैनर तले वोट मांगने आए। आज अमेरिका में सबसे अधिक उच्च शिक्षित समुदाय भारतीय और यहूदी समुदाय हैं।

संयोग के साथ कुछ यथार्थ भी हैं। आधुनिक विश्व में विज्ञान के क्षेत्र में सर्वाधिक योगदान यदि किसी एक समुदाय का है, तो वह यहूदी समुदाय है, जो प्राचीन इजरायल से निकला है। सापेक्षता का सिद्धांत देने वाले आइंस्टीन, परमाणु सिद्धांत देने वाले नील्स बोर, परमाणु बम बनाने वाले ओपन हाईमर और मनोवैज्ञानिक फ्रायड से लेकर फेसबुक के मार्क जकरबर्ग तक यहूदी समुदाय ने ज्ञान-विज्ञान में बहुत बड़ा योगदान दिया है। और प्राचीन विश्व के विज्ञान में शून्य, दशमलव,

जियोमेट्री, ट्रिग्नोमेट्री, बीजगणित, खगोल विज्ञान, वास्तु और आयुर्वेद तक सबसे बड़ा योगदान भारत ने दिया है। आज भी अमेरिका में भारतीयों की पहचान बेहतरीन डॉक्टर, सॉफ्टवेयर इंजीनियर और नासा के वैज्ञानिकों के रूप में होती है।इजरायल जब दुनिया के नक्शे से मिट गया था, तो एक प्राचीन मंदिर के अवशेष के रूप में 'वेलिंग वॉल' ही वह प्रेरणा स्रोत रही, जिसने इस राष्ट्र की चेतना को फिर से जागृत करके एक मजबूत राष्ट्र के रूप में स्थापित किया। भारत में भी ध्वस्त किए गए एक मंदिर (राम जन्मभूमि) की प्रेरणा से उत्पन्न आंदोलन ने स्वतंत्रता के बाद भारत की राजनीति का स्वरूप बदलकर वर्तमान सुदृढ़ और स्वाभिमानी स्वरूप बनाने में सबसे बड़ा योगदान दिया।

भारत और इजरायल विश्व के दो प्राचीनतम प्रागैतिहासिक राष्ट हैं, जो इतिहास के बुरे से बुरे वक्त को एक साथ सहते हुए 20वीं सदी में हिंसा और विभाजन का तांडव सहकर अस्तित्व में आए। शुरुआती दशकों में एक समान ढंग से आक्रमण झेला, बाद में आतंकवाद झेला और प्राचीन विश्व से लेकर आधुनिक विश्व तक ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में विश्व को सबसे ज्यादा योगदान दिया। आज विश्व में सकारात्मक भूमिका का फिर से निर्वहन करने के लिए ये दोनों देश गर्मजोशी के साथ खड़े हैं। समझौतों की इबारत चाहे जो भी हो, वह काल चक्र द्वारा लिखी गई कथा का एक छोटा प्रकटीकरण ही होगा, जो आगे विश्व हित में गौरवशाली यात्रा का पाथेय बनेगा।

THE HINDU

Date: 19-01-18

Dual duty

States have a twin responsibility: to protect free speech and preserve law and order

EDITORIAL

The state cannot choose between protecting freedom of expression and preserving law and order. It has a duty to do both. This is the core message of the Supreme Court order staying the notifications and decisions of four States to prohibit the screening of the film Padmaavat, and directing them to ensure that law and order is maintained during its exhibition. Gujarat and Rajasthan have notified a ban, while Haryana and Madhya Pradesh have indicated they would follow suit. What troubled the court was that creative freedom could be so easily prohibited by the state citing a possible risk to public order. It needs no reiteration that summary bans on films violate the freedom of speech and expression enshrined in Article 19(1)(a) of the Constitution. Such a right is subject to reasonable restrictions on some grounds, including public order. However, the use of the threat of violence and other forms of intimidation cannot give the state an oblique reason to stifle fundamental freedoms by voicing apprehensions and invoking its powers to maintain peace. In the past, the Supreme Court has made it clear that it cannot give anyone a virtual veto over a certificate issued by the Central Board of Film Certification, a statutory body, by threatening violence. The court has reiterated that the grant of a certificate by the CBFC denudes the state of the power to prevent the exhibition of a film.

The interim order, which paves the way for Padmaavat to be released on January 25, is in line with a series of judicial decisions. In S. Rangarajan v. P. Jagjivan Ram (1989), the Supreme Court said the state

cannot plead inability to handle the problem of a hostile audience as that "would be tantamount to negation of the rule of law and a surrender to blackmail and intimidation." In Prakash Jha Productions v. Union of India (2011), it reiterated that it is the state's duty to maintain law and order. In the current controversy, the filmmakers agreed to change its name from Padmavati to Padmaavat. The new title indicates it is based on a medieval poem on a legendary Rajput queen and not any historical personality. They also agreed to several cuts suggested by a special panel formed by the CBFC. If even after these concessions the protestors are allowed to obtain a ban, it would undoubtedly amount to a base surrender to blackmail and intimidation. It would be a taint on the country's record of protecting free speech if a film with admittedly no claim to historical accuracy is banned on the mere pretext that some people, who have not even seen it, find it offensive. The Supreme Court has indicated where the constitutional duty of State governments lies. It is now up to them to live up to that expectation.

Date: 19-01-18

Towards solar-powered agriculture

India must exploit the potential of this technology to help farmers meet irrigation needs

Abhishek Jain is a Senior Programme Lead at the CEEW, an independent not-for-profit policy research organisation.

In the past few years, solar pumps have consistently piqued the interest of various bureaucrats and politicians. The Prime Minister spoke about solar pumps from the ramparts of the Red Fort in 2016. There is no shortage of ideas which the Centre, States, civil society organisations, and enterprises are adopting to enhance penetration of solar for irrigation. But how should India proceed with this impactful technology?

Case studies

Maharashtra is solarising its agricultural feeders by installing solar power plants at the substation level, through competitive bidding. Karnataka is promoting solar pumps for existing grid-connected farmers under a net-metering regime, allowing them to generate additional income by feeding back surplus energy into the grid. In eastern States, GIZ, a German development agency, has piloted community ownership models providing water-as-a-service using solar pumps.Despite the diversity of approaches and significant government subsidies, only about 1,42,000 pumps have been deployed till date against a target of one million pumps by 2021. Such limited demand, in a country with 132 million farmers and 28 million existing irrigation pumps, calls for a reflection on existing deployment approaches.

In India, 53% of the net-sown area is still rain-fed. Solar pumps hold potential to enhance irrigation access, advance low-carbon agriculture, reduce the burden of rising electricity subsidies, and improve the resilience of farmers against a changing climate. But farmers' perspectives have to be considered and the local context appreciated when deploying the technology to maximise economic returns.

What can be done

At the Council on Energy, Environment and Water (CEEW), we have published three new research studies. I propose seven takeaways for the government to consider while promoting solar for irrigation. First, target marginal farmers with smaller solar pumps, particularly in areas with good groundwater development potential. Our research, based on a recent primary survey of 1,600 farmers in Uttar Pradesh, revealed that close to 60% of marginal farmers relied on buying water, the costliest option for irrigation, or on renting pumps to meet their needs.Second, couple solar pump deployment with micro-irrigation and water harvesting interventions at the farm and community levels. While lack of irrigation is a major bottleneck, 30% of farmers reported limited water availability for irrigation as a challenge.Third, focus on technology demonstration and deploy at least five solar pumps in each block of the country. CEEW research suggests that such efforts could have a profound effect on farmers' willingness to adopt solar pumps and spur bottom-up demand.

Fourth, in regions with already good penetration of electric pumps, prefer feeder solarisation through competitive bidding over solarisation of individual pumps. A comparative economic analysis finds that solarising individual grid-connected pumps is the costliest approach for the government to expand irrigation cover, while not being the most attractive option for farmers.Fifth, in regions with prevailing local water markets, promote community-owned solar pumps. CEEW research finds that while joint ownership drew interest from 20% of farmers, close to 80% of them were interested in buying water from a community-owned or enterprise-owned solar pump at competitive prices.Sixth, encourage sharing of solar pumps among farmers through farmer extension programmes. Given zero marginal cost of pumping with solar, water sharing, already a prevalent practice in many parts of the country, helps put a marginal price to the water.

Seventh, provide interest-subsidy to farmers combined with reduced capital subsidy to enable large-scale deployment of solar pumps in a shorter span of time. Such an approach would cover a greater number of farmers, helping them reap the benefits of solar pumps sooner, and increase overall returns to the economy.Guided by on-ground experiences and an expanding body of research, the government should continuously improve and innovate its support mechanisms on solar for irrigation. India must exploit the potential of this decentralised technology to achieve the dual national targets of 100 GW of solar and doubling farmers income by 2022 — setting a world-class example of greening the economy and overcoming its developmental challenges, simultaneously.